International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(3): 104-108

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(3): 104-108
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-03-2016
Accepted: 08-04-2016

डॉ. सुनील कुमार झा
साहित्य विभाग, बाबासाहेब रामकृष्ण संस्कृत महाविद्यालय, पचमढ़ी, दरभंगा, बिहार, भारत

Correspondence Author:
डॉ. सुनील कुमार झा
साहित्य विभाग, बाबासाहेब रामकृष्ण संस्कृत महाविद्यालय, पचमढ़ी, दरभंगा, बिहार, भारत

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक शिक्षा-पद्धति की प्रासङ्गिकता

डॉ. सुनील कुमार झा

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति का अनिवार्य अंग माना जाता है यही कारण है कि प्राचीनतम वैदिक वाङ्मय से लेकर अद्यावधि भारतीय शास्त्रों की विभिन्न विचारसरणियों में विद्या अथवा शिक्षा के स्वरूप पर अत्यन्त व्यापक एवं सुव्यवस्थित चिन्तन किया गया है। यद्यपि वैदिक वाङ्मय में शिक्षा शब्द का प्रयोग एक निश्चित शाब्दिक सम्प्रेषण के अर्थ में हुआ है[1] तथापि कालान्तर में शिक्षा शब्द एक व्यापक मानव-निर्माण की प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त होने लगा। वैदिक वाङ्मय में मनुष्य की सम्पूर्ण व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण शैक्षिक तत्त्वों का विवेचन किया गया है। भारत के प्राचीन विद्या-केन्द्र इन्हीं मूल उद्देश्यों की पूर्त्ति हेतु सदैव सचेष्ट रहे हैं जिनसे मनुष्य एक सफल एवं सुखमय जीवन व्यतीत करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति कर सके।

भारत की प्राचीन वैदिक शिक्षा ने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में ऐसे ज्ञान-विज्ञान का आविष्कार किया जिसका ऋणी आज भी विश्व का दार्शनिक तथा वैज्ञानिक जगत् है। प्राचीन काल में भारत को बौद्धिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में विश्व में जगद्गुरु के नाम से जो गौरव प्राप्त हुआ उसका श्रेय भारत की प्राचीन वैदिक शिक्षा पद्धति को ही जाता है। अपनी विशिष्ट शिक्षा पद्धति के कारण ही भारत ने अनेक शताब्दियों तक न केवल विश्व का सांस्कृतिक नेतृत्व किया, अपितु कला-कौशल, व्यापार एवं विज्ञान के क्षेत्रों में भी अग्रणी रहा। भारतीय संस्कृति एवं दर्शन की विजय पताका सुमात्रा, जावा, जापान, चीन, कोरिया तथा मध्य एशिया के देशों में सहस्रों वर्षों तक लहराती रही[2] किन्तु देश का दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत वर्ष में वैदेशिक संस्कारों से अनुप्राणित एवं तथाकथित वामपन्थी बुद्धिजीवियों ने प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था को महत्वहीन सिद्ध कर पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को ही सर्वतोभावेन प्रचारित-प्रसारित करने में अपनी ऊर्जा लगाई है।

उल्लेखनीय है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली मैकाले की देन है। १८२३ में लार्ड विलियम बैंटिक ने भारत में शिक्षा के सुधार का दायित्व लार्ड मैकाले को दिया। उसने कहा था कि- 'मेरा उद्देश्य इस शिक्षा से केवल यही है कि भारत में अधिक से अधिक लिपिक पैदा हों, जिससे यह देश बहुत दिनों तक गुलाम बना रहे।' इस संकुचित शिक्षण पद्धति में यद्यपि कतिपय नवीन विषयों का समावेश अवश्य था, परन्तु शिक्षा का मूलभूत प्राणतत्त्व नहीं था। फलतः यह प्रणाली मात्र उदरपूर्ति तक सीमित रही। अतएव विविध शिक्षाविदों ने इस पाश्चात्य शिक्षा पद्धति की भूरि भूरि भर्त्सना की है। उनका कथन है

कि केवल मानसिक विकास से मानव सब तरह से सुखी नहीं हो सकता। यह पद्धति जब तक चलती रहेगी तब तक देश का पूर्णतम विकास सम्भव नहीं है। वर्तमान उद्दण्डता, अनुशासनहीनता, अनैतिकता, चारित्रिक पतन, माता-पिता एवं गुरु के प्रति श्रद्धाहीनता आदि दोष इसी शिक्षा पद्धति के कारण हैं।[3]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक भारतीय विद्वानों ने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली की अव्यवहारिकता व अनुपयोगिता को समझकर वैदिक संस्कारों से अनुप्राणित एक समन्वित शिक्षण विधि को सञ्चालित करने की योजना भी निर्वाचित सरकारों के समक्ष प्रस्तुत की किन्तु महती विडम्बना है कि अद्यावधि हम अपनी शिक्षा-दीक्षा को मैकाले के चंगुल से मुक्त नहीं करा पाए हैं। जबकि आज समसामयिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वैदिक शिक्षा एवं संस्कारों का उपयोग शिक्षा के अभीष्ट लक्ष्यों की पूर्त्ति हेतु अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत शोध लेख आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त इन्हीं समस्याओं का आकलन करते हुए वर्तमान समय में वैदिक शिक्षा पद्धति की उपयोगिता को सिद्ध करने का एक प्रयास मात्र है।

वैदिक शिक्षा व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य मानव की अन्तर्निहित उन शक्तियों, कुशलताओं एवं गुणों का विकास करना है जिनसे वह अपने जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो सके। वैदिक परम्परा के अनुसार मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य है- धर्माचरण के द्वारा अर्थ एवं काम पुरुषार्थों की साधना करते हुए परमपुरुषार्थ मोक्ष अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति करना। वैदिक दृष्टि से विद्या प्राप्त करने का प्रमुख उद्देश्य भी यही है।[4] वैदिक वाङ्मय में इस परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यावहारिक शिक्षा की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। यजुर्वेद के ४०वें अध्याय में वैदिक ऋषि का स्पष्ट निर्देश है –

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥[5]
अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥[6]

जो लोग विद्या (अध्यात्म विद्या या परा विद्या) और अविद्या (लौकिक विद्या या अपरा विद्या) दोनों को साथ-साथ जानते हैं, वे ही भौतिक विद्या के सहारे सुखपूर्वक इस मर्त्यलोक को पार कर अध्यात्म विद्या के सहारे अमृततत्व या मोक्ष के अधिकारी होते हैं। जो लोग केवल अविद्या अर्थात् लौकिक शास्त्रों की उपासना करते हैं वे अन्धकार में पडे हुए हैं किन्तु उनसे भी अन्धकार में वे लोग हैं जो केवल अध्यात्म विद्या में लीन रहते हैं। इस प्रकार वैदिक शिक्षा-दर्शन उपर्युक्त दोनों प्रकार की विद्याओं का सामञ्जस्य है। डॉ० अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने प्राचीन भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में लिखा है- 'प्राचीन भारत में शिक्षा अन्तर्ज्योति और शक्ति का स्रोत मानी जाती थी, जो शारीरिक, मानसिक बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के सन्तुलित विकास से हमारे स्वभाव में परिवर्तन करती तथा उसे श्रेष्ठ बनाती है। इस प्रकार शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि हम समाज में एक विनीत और उपयोगी नागरिक के रूप में रह सकें। यह अप्रत्यक्ष रूप से हमें इहलोक और परलोक दोनों में आत्मिक विकास में सहायता देती है।'[7]

अतः कहा जा सकता है कि वैदिक शिक्षा-दर्शन एक आदर्शवादी शिक्षा-दर्शन है। किन्तु आदर्शवाद के सिद्धान्त का जो स्वरूप युरोप में प्रचलित हुआ, वैदिक आदर्शवाद उससे सर्वथा भिन्न है। वैदिक शिक्षण छात्र को केवल किसी विशेष सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा देना मात्र ही पर्याप्त नहीं समझता अपितु संस्कारों के द्वारा शरीर मन बुद्धि एवं आत्मा के गठन की व्यवस्था सुनिश्चित करता है।[8] इस रूप में वैदिक शिक्षण पद्धति पूर्णतः व्यावहारिक एवं प्रायोगिक है। विद्यार्थी ब्रह्मचर्याश्रम में २५वर्ष की आयु तक निरन्तर आचार्य के सानिध्य, सम्पर्क एवं निर्देशन में रहता था। उसके प्रत्येक क्षण की उपयोगिता निर्धारित थी। तत्कालीन शिक्षण पद्धति मात्र कक्षा तक ही सीमित नहीं थी अपितु प्रातःकालीन जागरण से रात्रि में शयन तक विद्यार्थी के प्रत्येक आचरण, व्यवहार, पठन-पाठन आदि क्रियाओं का निरन्तर शोधन, परिष्कार एवं परिमार्जन की प्रक्रिया चलती रहती थी। इस तरह विद्यार्थी सतत अनुकरण, श्रवण, मनन, चिन्तन एवं निदिध्यासन से पाठ्य विषयों को प्रत्यक्षतः प्राप्त कर लेता था।

आधुनिक शिक्षण व्यवस्था में इस प्रकार की आत्मीयता, तादात्म्य, सद्यः संवाद एवं दोष निवारण की क्षमता नहीं है। इस व्यवस्था में गुरु एवं शिष्य दोनों दो ध्रुवों पर स्थित हैं। दोनों के बीच की दूरी बढती जा रही है। वस्तुतः किसी

भी पद्धति के लिये आवश्यक है कि गुरु एवं शिष्य के मध्य सतत रूप से एक स्वस्थ संवाद बना रहे किन्तु आधुनिक में शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य दिन-प्रतिदिन संघर्ष के अवसर विकसित होते जा रहे हैं, जिसके अनेकों कारण विद्यमान हैं।[9]

इस सन्दर्भ में ५ सितम्बर २०१८ को शिक्षक दिवस के उपलक्ष्य में प्रसिद्ध समाचार-पत्र दैनिक जागरण में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से सम्बन्धित छपा एनसीईआरटी के भूतपूर्व निदेशक श्री जगमोहन सिंह राजपूत का लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं कि 'वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व-विकास की सम्भावना लगातार कम होती जा रही है। सारा ध्यान केवल अधिक से अधिक अंक प्राप्ति पर है। यह सुनने में तो अच्छा लग सकता है कि कक्षाओं में सीसीटीवी कैमरे लगाने से शिक्षा में माता-पिता की भागीदारी बढ जायेगी किन्तु साथ ही छात्र और अध्यापक की सहजता और पारस्परिकता समाप्त होकर परस्पर संवेदनहीनता भी बढेगी। जो किसी भी शिक्षा व्यवस्था के लिए सही नहीं है। शिक्षकों की स्वायत्तता का मखौल उडाकर कुछ भी सकारात्मक प्राप्त नहीं किया जा सकता। शिक्षण संस्थानों को थानों में बदलने से नकारात्मकता की ही वृद्धि होगी'।[10] एक महान् शिक्षाविद् की इस प्रकार की चिन्ता यह दर्शाती है कि आधुनिक शिक्षण पद्धति किस तरह से दूषित हो चुकी है जिसके द्वारा केवल यान्त्रिकता को ही अधिक बढावा दिया जा रहा है, विद्यार्थी का सम्पूर्ण विकास की ओर कोई ध्यान नहीं है।

इसलिए आज विद्यार्थी अथवा इस देश के प्रत्येक नागरिक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व-विकास के विषय में यदि आज जागरूकता विकसित करनी है तो निश्चय ही वैदिक शिक्षा व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताओं का उपयोग कर आधुनिक शिक्षा को समयानुकूल प्रासङ्गिक बनाना होगा।

1. गुरुकुलीय शिक्षा

किसी भी शिक्षा व्यवस्था की सफलता के लिए उचित परिवेश का होना अत्यन्त आवश्यक है। भोग विलास के वातावरण से दूर रहकर मनोरम प्राकृतिक वातावरण में ही आत्मसंयम एवं आत्मनिर्भरता का भाव विकसित हो सकता है। भिक्षाटन, पर्यटन, परिसंवाद, शास्त्रार्थ एवं अरण्य-जीवन गुरुकुलीय शिक्षा के अनिवार्य अंग थे। गुरुकुलीय वातावरण में राजा एवं रंक दोनों की ही सन्तान विना भेदभाव के त्याग, तपस्या एवं परिश्रम में लीन रहती थी। आचार्य विना किसी भेद-भाव के समस्त छात्रों को अपने समीप बैठाकर "सह नाववतु सह नौ भुनक्तु"[11] का उपदेश देता था एवं उनकी शिक्षा, पोषण एवं रक्षा के दायित्त्व का निर्वाह एक माता के समान किया करता था। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त का वर्णन विश्व साहित्य में अद्वितीय है-

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रिस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥[12]

2. आध्यात्मिक भावना का विकास

वैदिक शिक्षा का प्रधान लक्ष्य विद्यार्थियों को परम-तत्त्व का ज्ञान कराना था जो कि मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना गया है। इस लक्ष्य-प्राप्ति की तात्विक अभिव्यञ्जना मुख्य रूप से उपनिषदों में प्राप्त होती है। इसके अनुसार परमतत्त्व ब्रह्म अथवा अन्तिम सत्ता मनुष्य स्वयं है। समस्त भासमान जगत् भी उसी ब्रह्म से परिव्याप्त है- तत्त्वमसि।[13] सर्वं खल्विदं ब्रह्म।[14]

अतः मनुष्य का यह धर्म है कि उचित कर्मोपासना में प्रवृत्त होकर अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा परम ज्ञान प्राप्त कर सके। वेदों के अनुसार ब्रह्म, जीव तथा जगत् के तात्विक सम्बन्ध के परिज्ञान का नाम ही विद्या है, यही वास्तविक ज्ञान है। जीवन का यही अन्तिम लक्ष्य है, विद्या का यही तात्पर्य और शिक्षा का यही उद्देश्य है। यह विद्या लौकिक विद्या नहीं अपितु अध्यात्मविद्या है। योगेश्वर श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं कहते हैं कि-

अध्यात्मविद्या विद्यानां.....।[15] इस प्रकार भारतीय शिक्षा पद्धति में कर्म की उपासना करते हुए मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का साध्य बतलाया गया है।

3. आचरण की पवित्रता

भारतीय संस्कृति में आचरण की पवित्रता पर विशेष ध्यान दिया गया है। समस्त वेदों का ज्ञाता भी यदि चरित्र अथवा सदाचार से हीन है तो वह भी निन्दनीय माना गया है। सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः[16] आदि वाक्यों से सत्यनिष्ठ अभिव्यक्ति, धर्माचरण के अनुरूप आचार-विचार और व्यवहार के साथ-साथ अध्ययन के प्रति निश्छल भाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। ब्रह्मचर्याश्रम में विद्यार्थी शास्त्रोक्त नियमों एवं निर्देशों का पालन करता हुआ जितेन्द्रिय होकर सदाचरण एवं शील के महत्व को आत्मसात् कर लेता था। ब्रह्मचारी का जीवन त्याग-तपस्या और नियम का जीवन था। तभी तो वैदिक ऋषि कहता है कि-

ब्रह्मचारी ब्रह्मभ्राजद् बिभर्त्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।[17] अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करने वाला ही ब्रह्मज्ञान का अधिकारी होता है।

4. राष्ट्र के प्रति अनुराग एवं विश्वबन्धुत्व

विश्व में राष्ट्रवाद एवं विश्व-बन्धुत्व की संकल्पना का सर्वप्रथम प्रामाणिक उल्लेख वैदिक संहिताओं में ही प्राप्त होता है। माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः[18], कृण्वन्तो विश्वमार्यम्[19] आदि वाक्य वैदिक राष्ट्रवाद एवं विश्वबन्धुत्व की भावना को ही परिपुष्ट करते हैं। राष्ट्रवाद एवं विश्वन्धुत्व की इस परिकल्पना को मूर्त्तरूप देने के उद्देश्य से ही वैदिक ऋषियों ने पृथ्वी[20] एवं संज्ञान[21] सूक्तों की संरचना द्वारा समस्त मानव जाति को सद्भाव, सह-अस्तित्व एवं सम्पूर्ण धरा के लिए संवेदनात्मक अभिव्यक्ति का सन्देश दिया है। यजुर्वेद के राष्ट्रीय मन्त्र[22] में राष्ट्र के सभी अंगों के साथ-साथ उसके उत्थान की प्रार्थना की गई है। राष्ट्र की सर्वप्रथम आवश्यकता अज्ञानता को दूर करते हुए ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार करना है जो शिक्षा से ही सम्भव है।

5. धर्माधारित ज्ञान-विज्ञान एवं कला की शिक्षा

वैदिक शिक्षा व्यवस्था के अनुसार सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान, वैज्ञानिक आविष्कार एवं कला-कौशल, धर्मानुकूल एवं मानवीय संवेदनाओं में हस्तक्षेप करने वाला नहीं होना चाहिए। पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ और काम की सार्थकता भी तभी तक मानी जा सकती है जब तक वह धर्म के विरुद्ध न हो।[23] इसी दृष्टि को आधार बनाकर प्राचीन काल में भारत कला, संस्कृति एवं औद्योगिक क्षेत्र में विश्व में अग्रणी देश माना जाता रहा है तथा जगद्गुरु के नाम से विख्यात रहा है।

6. तेजस्वी जीवनवाद

वैदिक आर्ष शिक्षा से विमुख होने के कारण बौद्ध दर्शन से प्रभावित विभिन्न भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों की मूल स्थापना में- संसार दुःखमय है एवं उससे छुटकारा पाने के लिए ही मोक्ष की आवश्यकता है[24] जैसे जगत् और जीवन के प्रति नैराश्यवाद के समर्थक सिद्धान्तों का विकास हुआ किन्तु वैदिक शिक्षा व्यवस्था के सम्यक् विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वैदिक शिक्षा में उपर्युक्त निराशावाद का किञ्चिदपि लक्षण दिखाई नहीं देता। वैदिक ऋषि तो समस्त संसार को जीवन शक्ति प्रदान करने वाले सूर्य की ओर देखकर उत्साह से परिपूर्ण होकर कह उठता है-

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥[25]

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में पदे-पदे इसी तेजस्वी जीवनवाद का दिग्दर्शन होता है न कि जीवन से छुटकारा पाने की निराशा का वर्णन। वैदिक ऋषि के अन्तःकरण में ऐश्वर्य व जीवन के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की हीनता का भाव नहीं है। ऋग्वेद का ऋषि कहता है- न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः[26] अर्थात् जो पुरुषार्थ करता है अथवा पसीना बहाकर श्रम करता है, परमात्मा उसी का मित्र व पृष्ठपोषक है। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र ने हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को अविश्रान्त रूप से उद्योग एवं पुरुषार्थ की प्रेरणा देते हुए कहा है-

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति चरैवेति॥[27]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वैदिक शिक्षा व्यवस्था उन सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्तों पर आधारित है जिनकी वर्तमान समय में अत्यन्त प्रासाङ्गिकता है। दुर्भाग्यवश स्वन्त्रता प्राप्ति के ७१ वर्षों के पश्चात् भी विदेशी शिक्षा पद्धति ही सर्वत्र व्याप्त दिखाई देती है। जिसके परिणाम स्वरूप नवोदित भारतीय पीढी आज अपनी अनमोल सांस्कृतिक धरोहर से अनभिज्ञ, मौलिक चिन्तन एवं ज्ञान-विज्ञान से वञ्चित तथा चरित्र निर्माण से असम्बद्ध होकर विनाश के कगार पर खडी हुई है। अतः देशभक्त विचारकों एवं संस्थाओं को संगठित एवं सक्रिय होकर इस दिशा में चिन्तन करने की आवश्यकता है जिससे समयानुकूल उचित संशोधनों के साथ वैदिक शिक्षा पद्धति को आधार बनाकर आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन कर उसे प्रासङ्गिक बनाया जा सके।

सन्दर्भ

1. तत्र वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिः निष्पत्तिनिर्णायिनी शिक्षा आपिशलीयादिका। काव्यमीमांसा, अध्याय-२
2. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृ. ६
3. प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था, पृ० १५०
4. सा विद्या या विमुक्तये। विष्णु पुराण, १.१९.४१
5. यजुर्वेद, ४०.१४
6. वही, ४०.१२
7. Altekar- Education in Ancient Indian, p. 178
8. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृ. १३
9. प्रा. भा. शि. व्यव. पृ. १५१-१५३
10. साभार दैनिक जागरण, ५ सितम्बर २०१८
11. कठोपनिषद्, शान्तिपाठ
12. अथर्ववेद ११.३.५
13. छान्दोग्य उपनिषद् ३.८.७
14. वही ३.१४.१
15. गीता १०.३२
16. तैत्तिरीयोपनिषद् १.११
17. अथर्ववेद ११.५.२४
18. वही १२.१.१२
19. ऋग्वेद ९.६३.५
20. अथर्ववेद १२.१.१२
21. ऋग्वेद १०.१९१
22. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो.....। यजुर्वेद २२.२२
23. धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। गीता ७.२१
24. दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
    दृष्टे सा पार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्॥
    साङ्ख्यकारिका १
25. यजुर्वेद ३६.२४
26. ऋग्वेद ४.३३.११
27. ऐतरेय ब्राह्मण ७.१५